हज़रत अली अलैहिस्सलाम

आयतुल्लाहिल उज़मा सैय्यदुल उलमा सैय्यद अली नक़ी ताबा सराह

विलादतः– 13 रजब 30 आमुलफील

शहादतः– 21 रमज़ान 40 हिजरी

रसूल (स0) के बाद दूसरी मेयारी शख़सियत जो हमारे सामने है वह हज़रत अली इब्ने अबी तालिब (अ0) की है।

आप की दस साल की उम्र है जब पैग़म्बर को पैग़म्बरी मिली और अली इब्ने अबी तालिब (अ0) उनकी रिसलत के गवाह होते हैं यह पहले ही से रसूल (स0) की आग़ोश में तरबियत पा रहे थे अब उसी आग़ोश मे दावते इस्लाम की परवरिश शुरु हुई। यूँ कहना चाहिए कि इस्लाम ने आँख खोल कर उन्हें देखा और उनकी निगाह वह थी कि एलाने रिसालत के पहले रसूल (स0) की रिसालत को देख रहे थे। खुद अपने बचपन की कैफियत नह्जुलबलाग़ः के एक ख़ुतबे में बतायी है किः

''मैं रसूल के पीछे–पीछे यूँ रहता था जैसे ऊँटनी का बच्चा ऊँटनी के पीछे रहता है। मैं नुबुव्वत की ख़ुश्बू सूँघता था और रिसालत की रौश्नी देखता था।

अब ज़ाहिर है कि उनको रसूल (स0) से कितना उन्स होना चाहिए। फिर वह रिश्तेदारी की मुहब्बत अलग जो भाई होने के एतेबार से होनी चाहिए और वह अलग जो बहैसियत एक घर में रहने के होना चाहिए और वह इसके अलावा जो अपने मुरब्बी से होना चाहिए और वह इसके अलावा जो उनसे बहैसियते रसूल (स0) और उनके पैग़ाम से बहैसियते हक़्क़ानियत होना चाहिए।

अभी अगरचे दस साल की उम्र है मगर अरब और बनी हाशिम के और वह भी उस वक़्त के दस साल के बच्चे को अपने हिन्दुस्तान का इस ज़माने का दस साल का बच्चा न समझना चाहिए और फिर वह भी अली (अ0) जैसा बच्चा। फिर उस वक़्त तो दस ही साल की उम्र है मगर उसके बाद 13 साल रसूल (स0) के मक्का में गुजरने हैं और यही इन्तिहाई परेशानी और तकलीफों व सख़्तियों से भरा हुआ दौर है। हिजरत के वक़्त अली इब्ने अबी तालिब (अ0) की उम्र 23 साल हुई, दस साल से 23 साल के बीच का दौर वह है जब बचपना क़दम बढ़ाता हुआ मुकम्मल जवानी की मन्ज़िल तक पहुँचता है। यह ज़माना जोशो ख़रोश का होता है यह ज़माना वलवले व उमंग का होता है बढ़ती हुई हरारत, जवानी की मन्ज़िलें इस दौर में गुज़र रही हैं। आम इन्सानों के लिए यह दौर वह होता है जिसमें नतीजों और अन्जामों पर नज़र कम पड़ती है इन्सान हर दुश्वार मन्ज़िल को आसान और हर नामुमकिन को मुमकिन ख़याल करता है और नुक़सानात का अन्देशा दिमाग़ में कम लाता है। यहाँ यह दौर इस हाल में गुज़र रहा है कि अपने मुरब्बी के जिस्म पर पत्थर मारे जा रहे हैं। सर पर कूड़ा–करकट फेंका जाता है। तानों और बुराई का कोई दक़ीक़ा उठा नहीं रखा जाता फिर फितरी तौर पर यही लान–तान और बुराईयाँ हर उस शख़्स को जो

रसूल से जुड़ा है अपनी ज़ात के लिए भी सुनना पड़ती हैं ख़ास तौर से इस लिहाज़ से कि रसूल (स0) के हम उम्र या मुक़ाबिल फिर भी बड़ी उम्र के हो सकते हैं लेकिन अली इब्ने अबी तालिब (अ0) के हम उम्र जो मुख़ालिफ जमात में ख़याल किये जा सकते हैं वह बदतमीज़ और जाहिल होने के साथ अपनी उम्र के लिहाज़ से भी छोटी–छोटी हरकतों पर हर वक़्त आमादा समझे जा सकते हैं। कौन समझ सकता है कि वह अली इब्ने अबी तालिब (अ0) की जो रसूल (स0) से इतनी शदीद मुहब्बत रखते थे कैसे–कैसे दिल आज़ारी करते थे, क्या–क्या ताने और क्या–क्या ज़ख़्म जबान से पहुँचाते थे। उसे कोई रावी न भी बयान करे तो भी हर अक़ल वाला कुछ न कुछ समझ सकता है।

अब मुमकिन है कि उस वक़्त अभी दुनिया अली इब्ने अबी तालिब (अ0) को बिलकुल न समझती हो कि वह क्या हैं? मगर अब इस वक़्त तो तारीख़ के ख़ज़ाने में अली इब्ने अबी तालिब (अ0) की वह तसवीर भी मौजूद है जो हिजरत के एक साल बाद बद्र में और फिर दो साल बाद ओहद में और फिर ख़ैबर और ख़न्दक़ और हर जंग में नज़र आती है।

जज़्बात के लेहाज़ से, दिल की कुव्वत के एतेबार से, जुराअत व हिम्मत की हैसियत से 22 साल और 23 साल और फिर 24–25 साल में कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं होता। यक़ीनन अली (अ0), जैसे हिजरत के एक दो और तीन साल बाद बद्र व ओहद और ख़न्दक़ व ख़ैबर में थे ऐसे ही हिजरत के वक़्त और हिजरत के दो चार साल पहले भी थे। यही बाज़ू, यही बाजुओं की ताक़त, यही दिल और यही दिल की हिम्मत, यही जोश, यही इरादा, ग़र्ज़ कि सब कुछ अब बाद में नज़र आ रहा है। अब इसके बाद क़द्र करना पड़ेगी कि इस हस्ती ने वह 13 साल इस हाल में कैसे गुज़ारे।

और कोई ग़लत रिवायत भी यह नहीं बताती कि किसी वक़्त अली (अ0) ने जोश में आकर कोई ऐसा क़दम उठाया हो जिस पर रसूल (स0) को कहना पड़ा हो कि तुमने ऐसा क्यों किया? या किसी वक़्त पैग़म्बर (स0) को यह अन्दाज़ा हुआ हो कि यह ऐसा करने वाले हैं तो बुलाकर रोका हो कि ऐसा न करना। मुझे इससे नुक़सान पहुँच जायेगा।

किसी तारीख़ और किसी हदीस में ग़लत से ग़लत रिवायत ऐसी नहीं हालाँकि हालात ऐसे नागवार थे कि कभी–कभी बूढ़े लोगों को भी जोश आ गया और उन्होंने रसूल (स0) के मसलक के ख़िलाफ कोई इक़दाम कर दिया और उसकी वजह से उन्हें जिस्मानी तकलीफ से दोचार होना पड़ा। मगर हज़रत अली इब्ने अबी तालिब (अ0) से किसी से झगड़ा हो गया हो इसके मुताल्लिक़ कमज़ोर से कमज़ोर रिवायत पेशी नहीं की जा सकती।

यह वह गैर मामूली किरदार है जो आम लोगों के लेहाज़ से यक़ीनन आदत के ख़िलाफ यह किसी जज़्बाती इन्सान का किरदार नहीं हो सकता। यह 13 साल की लम्बी मुद्दत इस उम्र में जो जोश की उम्र है हौसलों की उम्र है। भला मुमकिन है इस सुकून के साथ गुज़ारी जा सके।

उसके बाद हिजरत होती है। हिजरत के वक़्त वह फिदाकारी, पैग़म्बर (स0) का फरमाना कि आज रात को मेरे बिस्तर पर लेटो। मैं मक्के

से चला जाऊँगा। पूछा हुज़ूर की ज़िन्दगी तो इस सूरत में बच जाएगी? फरमाया हाँ मुझ से वादा हुआ है मेरी हिफाज़त होगी यह सुनकर हज़रत अली इब्ने अबी तालिब (अ0) ने सर सिजदे में रख दिया कहा शुक्र है कि उसने मुझे अपने रसूल (स0) का फ़िद्या क़रार दिया।

चुनानचे रसूल (स0) तशरीफ ले गए और आप पैग़म्बर (स0) के बिस्तर पर आराम करते रहे इसके बाद कुछ दिन मक्का मुअज़्ज़मा में मुक़ीम रहे मक्का में मुश्रिकीन की अमानतें उनके मालिकों को वापस की और पैग़म्बर की अमानतें साथ लीं यानि हुज़ूर के घर की ख़वातीन जिनमें फवातिम यानि फातिमा बिन्ते मुहम्मद (स0), फातिमा बिन्ते असद और फातिमा बिन्ते ज़ुबैर बिन अब्दुलमुत्तलिब थीं उनको लेकर रवाना हुए। ख़ुद ऊँट की लगाम अपने हाथ में ली और हिफाज़त करते हुए पैदल मदीना पहुँचे यहाँ आने के एक साल बाद अब जिहाद की मन्ज़िल आई और पहली ही जंग यानि बद्र में अली (अ0) ऐसे नज़र आए जैसे बरसों के बहादर, जंगें लड़े हुए और कड़ियाँ मैदान की झेले हुए।

उधर के तीन बड़े सूरमा उतबा, शैबा और वलीद। उनमें से शैबा को जनाबे हमज़ा ने क़त्ल किया, उतबा और वलीद दोनों का हज़रत अली इब्ने अबी तालिब (अ0) की तलवार से ख़ात्मा हुआ। यह कारनामा ख़ुद जंग की फतह का ज़ामिन था। वह तो सिर्फ इन्सानी तौर पर आम मुसलमानों में दिल को मज़बूत करने के लिए इस जेहाद में फरिश्तों की फौज भी आ गई यह साबित करने के लिए कि घबराना नहीं वक़्त पड़ेगा तो फरिश्तें आ जाएँगे। हालाँकि इसके बाद फिर किसी जंग में उनका आना साबित नहीं। इसके बावजूद ओहद में अली इब्ने अबी तालिब (अ0) ने अकेले बिगड़ी हुई लड़ाई को बनाकर और जीत हासिल करके दिखला दिया कि बद्र में भी अगर फरिश्तों की फौज न आती तो यह दस्त व बाज़ू उस जंग को भी जीत ही लेते। इसके बाद ख़न्दक़ है ख़ैबर है। हुनैन है यहाँ तक कि उन तमाम कारनामों से अली (अ0) का नाम ही दुश्मनों के लिए मौत के बराबर हो गया। ख़ैबर व ख़न्दक़, ज़ुलफिक़ार और अली (अ0) में दलालते इल्तेज़ामी का रिश्ता क़ायम हो गया कि एक के ख़याल से मुमकिन ही नहीं कि दूसरे का ख़याल न हो। यह वही 13 साल तक ख़ामोश रहने वाले अली (अ0) हैं। इन दस साल के अन्दर जिनका हाल यह है मगर उसी दौरान हुदैबिया की मन्ज़िल आती है और वही हाथ जिसमें जंग का अलम होता था यहाँ उसी में सुलह का क़लम है जो तलवार वाला था वही क़लम वाला नज़र आता है और उन सुलह की उन शर्तों को जिन पर इस्लामी फौज के बहुत से लोगों में बेचैनी फैली हुई है और उसे कमज़ोरी समझा जा रहा है बिना किसी बेचैनी और बग़ैर किसी शक व शुब्ह के हज़रत अली इब्ने अबी तालिब (अ0) लिख रहे हैं जिस तरह मैदाने जंग में क़दम में घबराहट और हाथों में कपकपी नहीं आयी उसी तरह आज सुलह के अहदनामा के लिखने में उनके क़लम में कोई घबराहट और हाथों में कपकपाहट नहीं है। उनका जेहाद तो वही है जिसमें ख़ुदा की मर्ज़ी हो। जिसके रास्ते में तलवार चलती थी उसी के रास्ते में आज क़लम चल रहा है और सुलह नामा लिखा जा रहा है।

इसी ज़माने में एक मुल्क भी फ़तह करने भेजे गए थे और वह यमन है मगर वह तलवार वाले और साहेबे ज़ुलफिक़ार होते हुए भी यहाँ तलवार से काम नहीं लेते। उन्होंने इस्लामी जीत की मिसाल पेश कर दी। पूरे यमन को सिर्फ ज़बानी तबलीग़ से एक दिन में मुसलमान बना लिया। ख़ून का एक क़तरा नहीं बहा। दिखा दिया कि मुल्क इस तरह फतह करो। मुल्क पर क़ब्ज़े के मानी यह हैं कि मुल्क वालों को अपना बना लो, बस मुल्क तुम्हारा हो गया।

बहरहाल इन दो मिसालों को छोड़कर हज़रत अली इब्ने अबी तालिब (अ0) की ज़िन्दगी के इस दौर में बहुत से मौक़ों पर तलवार नुमायाँ नज़र आएगी और ''ला फता इल्ला अली ला सैफा इल्ला ज़ुलफिक़ार'' में आपकी शान छुपी हुई मालूम होगी मगर अब पैग़म्बरे ख़ुदा (स0) की वफात हो जाती है उस वक़्त हज़रत अली इब्ने अबी तालिब (अ0) की उम्र 33 साल की है इसे भरपूर जवानी का ज़माना समझना चाहिए मगर इसके बाद पच्चीस साल की लम्बी मुद्दत हज़रत अली इब्ने अबी तालिब (अ0) यूँ गुज़ारते हैं कि तलवार नियाम में है और आपका काम इबादते इलाही और ज़िन्दा रहने भर की रोज़ी के लिए मेहनत व मज़दूरी के सिवा बज़ाहिर और कुछ नहीं।

यह ऐसी काँटों भरी वादी है जिसमें ज़रा भी खुलकर कुछ कहना तहरीर को मुनाज़रों से भरने वाला बना देना है। फिर भी यह सोचने और समझने की बात लाज़मी है कि बावजूद यह कि मुसलमानों की जंग आज़माइयों का ज़माना और बड़ी जीतों का दौर है जिसमें इस्लाम क़ुबूल करने के बाद गुमनाम हो जाने वाले लोग सैफुल्लाह और फातेहे मुमालिक और ग़ाज़ी बन रहे हैं फिर जो भी तलवार हर जगह पर रसूल (स0) के अहद में नुमायाँ काम करती नज़र आती थी वह इस दौर में पूरी तरह नियाम के अन्दर है? आख़िर क्या बात है कि वह जो हर मैदान का मर्द था अब तनहाई के गोशे में घर के अन्दर है। अगर उसको बुलाया नहीं जाता तो क्यों? और अगर बुलाया जाता है और वह नहीं आता तो क्यों? दोनों बातें तारीख़ के एक तालिबे इल्म के लिए अजीब ही हैं ऐसा भी नहीं है कि वह बिलकुल ग़ैर मुताल्लिक़ है नहीं अगर कभी कोई मशवरा लिया जाता है तो वह मशवरा दे देता है कोई इल्मी मसला सामने आता है और उसके हल करने की ख़ाहिश की जाती है तो वह हल कर देता है मगर उन लड़ाइयों में जो जेहाद के नाम से हो रही हैं उसे शरीक नहीं किया जाता। न वह शरीक होता है। 25 साल की लम्बी मुद्दत गुज़री और अब हज़रत अली इब्ने अबी तालिब (अ0) की उम्र 58 साल की हो गई यह बुढ़ापे की उम्र है जिस तरह मक्का की 13 साल की ख़ामोशी के दरमियान बचपना गया था और जवानी आई थी उसी तरह इस 25 साल की ख़ामोशी के दौरान में जवानी गई और बुढ़ापा आया। गोया उनकी उम्र का हर दोराहा सब्र बर्दाश्त और ज़ब्त व सुकून के आलम में आता रहा। भला अब कैसे ख़याल हो सकता है कि जिसको जवानी गुज़र कर बुढ़ापा आ गया और उसने तलवार नियाम से न निकाली वह अब कभी तलवार खींचेगा और मैदाने जंग में मार–काट करता नज़र आयेगा। आलमे अस्बाब कें आम तक़ाज़ों के लेहाज़ से तो उस 25 साल की मुद्दत में जोश व उमंग की चिंगारियाँ तक सीने में बाक़ी नहीं रहीं। हिम्मत के सोते सूख गए और अब दिल में उनकी नमी तक नहीं रह गई। अब न

दिल में वह जोश हो सकता है न बाज़ुओं में वह ताक़त। न हाथों में वह सफाई और न तलवार में वह काट मगर 58 साल की उम्र में वह वक़्त आ गया कि मुसलमानों ने ज़िद करके ख़िलाफत की बागडोर आपके हाथ में दे दी। आपने बहुत इन्कार किया मगर मुसलमानों ने खुशामद व गिड़गिड़ाहट की हद कर दी और हुज्जत हर तरह तमाम हो गई। लेकिन जब आप (अ0) तख़्ते ख़िलाफ पर बैठे और इस ज़िम्मेदारी को क़ुबूल कर चुके तो कई जमाअतों ने बग़ावत कर दी। आपने हर एक को पहले तो समझाने की कोशिश की और जब हुज्जत हर तरह तमाम हो गई तो दुनिया ने देखा कि वही तलवार जो बद्र व ओहद और ख़न्दक़ व ख़ैबर में चमक चुकी थी अब जमल, सिफ्फीन और नहरवान में चमक रही है। और फिर यह नहीं कि फौजें भेज रहे हों और ख़ुद घर में बैठे बल्कि ख़ुद मैदाने जंग में मौजूद और ख़ुद जेहाद में लगे हुए हैं अब ऐसा महसूस हो रहा है जैसे कोई नौजवान तबीअत जो सामने वाले से दो–दो हाथ करने के लिए बेचैन हो। चूँकि हज़रत की हैबत दुश्मन की फौज के हर सिपाही के दिल पर थी इसलिए सिफ्फीन में जब आप मैदान में निकल आते थे तो फिर मुक़ाबला करने वाली जमात का दरवाज़ा बन्द हो जाता था और कोई मुक़ाबले को बाहर न आता था। उसे देख कर आपने यह सूरत इख़्तियार फरमाई कि दूसरे अपने साथियों का लिबास पहन कर तशरीफ ले जाते थे। चूँकि जंग का लिबास बदलने से पता न चलता था कि यह कौन है और आप कभी अब्बास बिन रबीआ और कभी फ़ज़्ल बिन अब्बास और कभी किसी और का लिबास पहन कर तशरीफ ले जाते थे और इस तरह बहुत से मौत की नज़र हो जाते थे।

लैलतुलहरीर में तैय कर लिया कि जीत के बिना जंग न रुकेगी। पूरे दन लड़ाई हो चुकी थी सूरज डूब गया तब भी लड़ाई न रुकी। पूरी रात जंग होती रही यहाँ तक कि जंग का नक़्शा बदल गया और सुब्ह होते होते शाम की फौज ने क़ुर्आन नेज़ों पर उठा लिये जिनसे जंग टालने की दरखास्त मतलूब थी और यह जंग की हार का खुला हुआ एलान था।

यह 60 साल की उम्र में जिहाद है और यही वह हैं जो तेंतीस साल की उम्र से 57 साल तक की मुद्दत यूँ गुज़ार चुके हैं जैसे कि सीने में दिल ही नहीं और दिल में जोश और जंग का हौसला ही नहीं।

अब ऐसे इन्सान को क्या कहा जाए? जंग पसन्द या आफियत पसन्द? मानना पड़ेगा कि यह कुछ भी नहीं हैं यह तो फराएज़ के पाबन्द हैं जब फर्ज़ होगा ख़ामोशी का तो ख़ामोश रहेंगे। चाहे जवानी की हरारत और उसका जोश और जज़्बा कुछ भी तक़ाज़ा रखता हो। उस वक़्त कितनी ही सब्र का इम्तिहाने लेने वाली मुश्किलें सामने आती रहें वह सब्र करेंगे और घबराएँगे नहीं।

और जब फर्ज़ महसूस होगा कि तलवार उठाएँ तो तलवार उठाएँगे, चाहे बुढ़ापे का ढलना हो जो आम लोगों में इस उम्र में हुआ करता है कुछ भी तक़ाज़ा रखता हो। अब जंग व ज़र्ब में वह सख़्तियों का मुक़ाबला करने में वह जवानों से आगे नज़र आएँगे। यही वह "मेराजे इन्सानियत" है, जहाँ तक तबीयत, आदत और जज़्बात के तक़ाज़ों में गिरफ्तार इन्सान पहुँचा नहीं करते।

□□□